

## कोकिलभाव का प्राकट्य

जीव भगवान का नित्यदास है । भगवान् के साथ इसका एक अखण्ड सम्बन्ध है और इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उसके बिना यह रह ही नहीं सकता । वह कभी मिटता नहीं, केवल विस्मृति का एक परदा आ जाता है और यह भूला सा भटका सा संसार में इधर-से-उधर दौड़ने लग जाता है । जिस समय भगवत्कृपा से श्रवण, कीर्तन, स्मरण, दैत्य, विज्ञापना, लालसा, ध्यान, व्याकुलता और भाव से यह विस्मृति का परदा हट जाता है उसी समय अपने स्वतःसिद्ध नित्यसम्बन्ध की चाँदनी हृदया-काश में फैल जाती है । सच्ची बात तो यह है कि इस संसार के सब जीव उसी समय की उसी भाव के प्राकट्य की आशा लिये अपनी अस्वाभाविक स्थिति से पीड़ित होकर भटक रहे हैं, छट-पटा रहे हैं, चाहे वे साधक हों या असाधक । उस सम्बन्ध के प्रकट हुए बिना कोई भी स्थिर नहीं हो सकता, कोई भी चैन से नहीं बैठ सकता ।

भक्त कोकिलजी का भगवान् से जो नित्य सम्बन्ध है वह क्या है ? कब से है ? कब गुप्त रहा ? कब प्रकट रहा ? इसको तो केवल भगवान् ही जानते हैं । स्वयं भक्त कोकिलजी भी यह सब कुछ बताने में असमर्थ हैं, परन्तु देखा यह गया कि जब वे ब्रजभूमि से लौटकर मीरपुर आये तब उनकी दशा अत्यन्त स्थिर एवं निश्चयात्मक भावमयी हो गयी । मानों श्रीबरसाने में



**कोकिल भाव में मग्न साई**

दीर्घ काल तक एकान्त में श्रीस्वामिनी वृषभानुनन्दिनी से जो कुछ उन्होंने बातचीत की थी, लालसा की थी वह पूर्ण हो गयी । एक विशेष भाव का जो न जाने कब से छिपा हुआ था, आविर्भाव हो गया ।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि भक्त कोकिलजी को श्रीभूनन्दनी के उस स्वरूप और लीला की सेवा प्राप्त हुई थी जो उन्होंने पुर्नवनवास के समय महर्षि वाल्मीकिजी के आश्रम में प्रकट की थी । जब जब श्रीस्वामीजी के हृदय में इस भाव का उदय होता कि रघुनन्दन रामभद्रजू महाराज प्रजा पालन का भार अपने ऊपर लेकर भीतर-ही-भीतर श्रीजनक-नन्दिनी के निर्वासन और विरह के कारण अत्यन्त व्यथित, पीड़ित व्याकुल हो रहे हैं और इधर श्रीजनकनन्दिनी परम सुकुमारी पतिप्राणा सतीगुरु सन्तस्वभावा श्रीवैदेही भी अपने प्राणप्रियतम के विरह में अत्यन्त व्याकुल होकर जल से अलग हुई मछली की भाँति छटपटा रही हैं, तब उनका हृदय व्याकुल हो जाता, और उनका रोम-रोम मन का कोना-कोना इन दोनों को मिलाने के लिए, इन दोनों को सुखी करने के लिए आतुर हो उठता ।

इस भाव के उद्रेक की दशा में यह अपने मानवरूप को दासी या सखी रूप को भी अतिक्रमण कर जाते और एक सुन्दर कोकिल के रूप में उड़कर श्रीप्रियाजू के पास से श्रीप्रियतम

के पास और श्रीप्रियतम के पास से श्रीप्रियाजी के पास आ-जाकर एक दुसरे का सन्देश आदान-प्रदान करते । यह कोकिल भाव इतना दृढ़ और स्थिर देखा गया के स्वामीजी लगभग सत्रह वर्ष तक इसी में तन्मय रहे ।

एक दृष्टि से विचार करें तो मालूम पड़ता है कि कोकिल का भाव बहुत ही मधुर एवं सेवा के अनुरूप है । यह संयोग और वियोग एवं ऐश्वर्य और माधुर्य की सभी प्रकार की लीलाओं में उपयोगी है । कोकिल का स्वर विरह के समय मिलन-की उत्कण्ठा उत्पन्न करता है, मान को घटाता है, दूरी को कम करता है । संयोग के समय कोकिल का पञ्चम स्वर रस की वृद्धि करता है । यह श्रृंगार रस का उद्दीपक है । कोकिल अपना ही पक्षी है इसलिये श्रृंगार की अन्तरंग से अन्तरंग लीला में भी युगलकरकार को उससे संकोच नहीं है । पक्षी होने के कारण इतनी स्वतन्त्रता है कि किसी भी महल या कुंज में प्रवेश करने में कोई रुकावट नहीं है एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने आने में विमान की या महीनों के समय की जरूरत नहीं है । कोकिल निष्काम होती है । रोटी-कपड़े की समस्या हल नहीं करनी पड़ती । कहीं कुछ खा लिया और सेवा में सावधान रही । लंगोटी की जरूरत नहीं, घर नहीं बनाता पड़ता । वृक्ष उन्हें बहुत प्यारे होते हैं, क्योंकि उन्हें उन में युगल रूप माधुरी का दर्शन होता है । अधिकांश झुरमुटों में छिपी रहती है । श्रीजू महाराज उनके अंग का रंग देखकर मुदित होते हैं । उनका

संगीत सुनकर युगलसरकार प्रसन्न होते हैं । जब कोकिल कभी कुहू-कुहू करने लगती है तब श्रीजू महाराज उनकी मधुर तान के साथ अपना कण्ठ स्वर मिलाती है ।